शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 9
Issue 1
15 January, 2018

प्राचीन संस्कृत साहित्य में कौटिल्य का 'सप्तांग सिद्धान्त'

बीज शब्द :

अर्थशास्त्र, मण्डल योनि, साव्यव रूप, सप्तांग, स्वामी, अमात्व, जनपद दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र, अभिगामिक गुण, प्रज्ञा गुण उत्साह गुण, स्थानीय, द्रोणमुख कार्वटिक, संग्रहण, गांव, औदिक, दुर्ग, पार्वत दुर्ग, धान्वन दुर्ग, वन दुर्ग, पैदल सेना, रथ सेना, अश्व सेना, हस्ति सेना।

संस्कृत साहित्य को समृद्ध करते हुए कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। राज्य के 'साव्यव' स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कौटिल्य ने इसके सात अंग बताये हैं- स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश दण्ड तथा मित्र। इनका सामूहिक वर्णन 'सप्तांग सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है। इन अंगों के उचित समन्वय तथा सामन्जस्यपूर्ण व्यवहार से ही राजलक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है जिसके लिए कौटिल्य स्वामी (राजा) की भूमिका को सर्वोपरि मानते हैं।

*****

सुरभि श्रीवास्तव
प्रवक्ता, कॉलेज ऑफ टीचर एजुकेशन (CTE),
वाराणसी, उ0प्र0
E-mail: 099surabhi@gmail.com

प्राचीन संस्कृत साहित्य में कौटिल्य का 'सप्तांग सिद्धान्त'

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन का जनक कौटिल्य को माना जाता है। कौटिल्य ही वह सर्वप्रथम भारतीय राजनीतिक चिन्तक हैं जिन्होंने राज्य के बारे में क्रमबद्ध एवं विस्तृत दर्शन का प्रतिपादन अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में किया। शासन कला तथा कूटनीति के महान प्रतिपादक कौटिल्य की महान अमर संस्कृत भाषा (गद्य-पद्य) रचना 'अर्थशास्त्र' सम्भवत: 321 ई0पू0 से लेकर 400 ई0पू0 के बीच की मानी जाती है जिसमें 15 अधिकरण, 150 अध्याय और 180 प्रकरण हैं। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' के सम्बन्ध में कहा है कि- 'सम्पूर्ण शास्त्रों का विधिवत अध्ययन करके और उनके प्रयोगों को अच्छी तरह परीक्षण करके ही राजा के लिए इस शासन विधि की रचना की गयी है।, अत: यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र का प्रमुख विषय राजनीति ही है। प्राचीनकाल में राजनीतिक विषय और आर्थिक विषय एक ही माने जाते थे।[1]

चूंकि 'अर्थशास्त्र' मूलत: राजनीतिक ग्रंथ है अत: इसमें राज्य के स्वरूप से लेकर आंतरिक प्रशासन तथा परराष्ट्र तक के सम्बन्धों व सुशाासन तक की चर्चा कौटिल्य ने की है। राज्य का स्वरूप कैसा हो? इस संबंध में कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' के छठे अधिकरण: मण्डल योनि में 'सप्तांग सिद्धान्त' की वृहद विवेचना की है।[2]

संस्कृत साहित्य में सप्तांग सिद्धांत की उत्पत्ति-कौटिल्य द्वारा वर्णित राज्य का 'सप्तांग सिद्धांत' कौटिल्य की मौलिक देन नहीं थी। इसके पूर्व संस्कृत साहित्य के अंतर्गत मनुस्मृति में आचार्य मनु ने 'सप्तांग सिद्धांत' का वर्णन दिया था। आचार्य मनु को इस सिद्धांत का मूल प्रवर्तक माना जाता है। मनुस्मृति के अंतर्गत उन्होंने राज्य के सात अंग बताये (स्वामी अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दण्ड और सुहृद) जो राज्य के आधार तत्व हैं। शुक्रनीति में महर्षि शुक्राचार्य ने भी संस्कृत साहित्य में सप्तांग सिद्धांत को मान्यता दी है। राज्य की तुलना उन्होंने वृक्ष से की है। महाभारत के 'शांति पर्व' में भीष्म, युधिष्ठिर संवाद राजधर्मानुशासन के अंतर्गत सप्तांग सिद्धांत पर प्रकाश डालते हैं। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में दण्डनीति, राजविद्या और राजधर्म के सिद्धांतों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है जिसमें राज्य एवं शासन की उत्पत्ति, शासन के स्वरूप, राजा की शक्तियां, राजा-मंत्री, राजा-प्रजा के सम्बन्धों का विवेचन मिलता है। इसमें ऋग्वेद (जिसमें समस्त संसार की कल्पना विराट पुरूष के रूप में की गयी है) से लेकर सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, विष्णु स्मृति, नारद स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, बृहस्पति स्मृति, नीतिशास्त्र (कामंदक) आदि में राजधर्म, दण्डनीति का विस्तृत विवेचन किया गया है।

सप्तांग सिद्धान्त:

कौटिल्य राज्य के 'साव्यवी' (Organic) रूप में विश्वास करते हैं। मनु, भीष्म और शुक्र जैसे प्राचीन मनीषियों की भांति कौटिल्य ने भी राज्य की कल्पना एक ऐसे जीवित जाग्रत शरीर के रूप में की है जिसके सात अंग होते हैं। ये अंग हैं-स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड तथा मित्र। इन्हें वह राज्य की प्रकृति भी कहते हैं और राज्य के अंग भी। इनका सामूहिक वर्णन 'सप्तांग सिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है। राज्यों के इन अंगों को कौटिल्य ने 'प्रत्यांगभूत' भी कहा है।[3]

1. **स्वामी:**

कौटिल्य के अनुसार राजा राज्य का प्रधान अंग है और राज्य की महत्वपूर्ण स्थिति को दृष्टि में रखते हुए ही उन्होंने उसे स्वामी का नाम दिया है। राजनीति की सफलता या असफलता तथा राज्य का भविष्य राजा की शक्ति, और नीति पर निर्भर करता है। कौटिल्य ने राजा अथवा स्वामी के गुणों पर बहुत बल दिया है तथा उसे तीन प्रकार का बताया है- अभिगामिक, प्रज्ञा तथा उत्साह गुण।

अभिगामिक गुणों के अंतर्गत कौटिल्य ने स्वामी को महाकुलीन, दैवबुद्धि, धैर्य सम्पन्न, दूरदर्शी, धार्मिक, सत्यवादी, कृतज्ञ, उच्च अभिलाषी, उत्साही, शीघ्र कार्य करने वाला, कुशल, प्रवीण, वश में करने वाला, दृढ, गुण-सम्पन्न परिवार वाला, और शास्त्र के अनुसार आचरण करने वाला बताया है।

प्रज्ञा गुण के अंतर्गत स्वामी, शास्त्रज्ञान, शास्त्रचर्चा, ग्रहणशीलता, तीखी स्मृति, बात की तह तक पहुंचने की शक्ति, दुष्ट पक्ष का त्याग करने वाला, गुणवानों का पक्षधर होता है।

उत्साह गुण में शौर्य, अमर्ष, क्षिप्रकारिता और दक्षता स्वामी के गुण कहलाते है।

इसके अलावा वाग्मी, प्रगल्लभ, बलवान, उन्नतमन संयमी, निपुण सवार, आक्रामक, रक्षक, उपकार और अपकार समझने तथा तदनुरूप प्रतिकार करने वाला, लज्जावान, दुर्भिक्ष में सहायक, संधि को समझने वाला, युद्ध में चतुर, संघर्ष में विवेकी, शत्रु से लाभ उठाने वाला, प्रियभाषी, हंसमुख, उदार, वृद्ध का आदर करने वाला आत्मसम्पन्न स्वामी श्रेष्ठ होता है।[4]

कौटिल्य इस तथ्य से परिचित थे कि उपरोक्त सभी गुणों से युक्त व्यक्ति सरलता से नहीं मिल सकता किन्तु अभ्यास

द्वारा उनमें कुछ परिवर्तन सम्भव है। इसलिए कौटिल्य ने राजा की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया है। उनके अनुसार- 'जिस प्रकार धुन लगी हुई लकड़ी जल्दी नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जिस राजकुल के राजकुमार शिक्षित नहीं होते वह राजकुल बिना किसी युद्ध आदि के स्वयं नष्ट हो जाता है।'

राजा अपने न्यायोचित कर्तव्यों का पालन करे, इस दृष्टि से कौटिल्य ने राजा की दिनचर्या भी निर्धारित की है। रात और दिन में उसके सारे समय का पूरा कार्यक्रम कौटिल्य ने दिया है और उसमें इस बात का पूरा ध्यान, रखा गया है कि राजा का एक एक, क्षण जनकार्य में लगा हो। भोग-विलास, नाच रंग आदि के लिए कोई भी समय उसमें नहीं दिया गया है और रात में भी इसके लिए केवल चार घंटे की ही व्यवस्था की गयी है। कौटिल्य ने राजा के दिन रात के कार्यक्रम 24 घंटे को 16 घड़ियों में बांटा है। प्रत्येक घड़ी 3/2 घंटे की है।

राजा के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए कौटिल्य ने राजा और प्रजा में पिता पुत्र संबंधों की बात की है कि जैसे पिता पुत्र का ध्यान रखता है, वैसे ही राजा के द्वारा प्रजा का ध्यान रखा जाना चाहिए।

प्रजा सुखे सुखः राज्ञः प्रजानाध्यहिते हितम्
नात्मंप्रियं सुखं राज्ञः प्रजानाच्य सुखे सुखम्।[5]

२. अमात्य या मंत्रिपरिषद्:

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजा के लिए मंत्रिपरिषद की आवश्यकता पर बहुत बल दिया है और कहा है कि-'राज्य एक रथ के समान है जिसका एक पहिया राजा है और दूसरा अमात्य। राज्य रूपी रथ को चलाने के लिए राजा और अमात्य दोनों की उपस्थिति अनिवार्य है। अगर एक का भी अभाव होगा, तो राज्य का संचालन असम्भव हो जायेगा, जैसे एक पहिया रहने से रथ को नहीं चलाया जा सकता।' कौटिल्य के अमात्य का मतलब मात्र मंत्री ही नहीं वरन् बल्कि प्रशासनिक पदाधिकारी एवं शासन संचालन से सम्बद्ध अन्य कर्मचारी भी है अत: कौटिल्य के अनुसार राजा के लिए यह उचित है कि वह योग्य मंत्री रखे। अपने सगे-संबंधी, वंश, जाति आदि के अयोग्य लोगों को अमात्य में कदापि शामिल न करे अन्यथा राज्य का पतन सुनिश्चित है।

योग्यता का मापदण्ड निर्धारित करते हुए कौटिल्य का कथन है कि राजा को महत्वपूर्ण पदों पर स्वदेश में उत्पन्न कुलीन, अवगुण विहीन, अर्थशास्त्र का ज्ञाता, चतुर, प्रतिकार में समर्थ, स्थिर, ललित कला का ज्ञाता, बुद्धिमान, वाक्पटु, प्रभावशाली, देखने में सौम्य, सहिष्णु, द्वेषरहित, प्रभावपूर्ण तथा विद्वान व्यक्तियों की नियुक्ति करनी चाहिए। इसकी जांच प्रत्यक्ष, परोक्ष, अनुमान तथा गुप्त रूप से करनी चाहिए तथा इसके अलावा नियुक्ति से पूर्व पदाधिकारी का निवास स्थान, शील, गौरव, उत्साह, दृढ़ता, बल, स्मृति, प्रतिभा, स्वामीभक्ति, मित्रता, स्वास्थ्य शास्त्रज्ञान, व्यवहार की पवित्रता जैसे गुणों की भी पड़ताल करनी चाहिए।[6] इस संबंध में डा0 बेनी प्रसाद लिखते हैं कि- 'कौटिल्य के अनुसार निष्कलंक व्यक्तिगत जीवन, बौद्धिक चातुर्य, उचित निर्णय कर्तव्य की उच्च भावना और लोकप्रियता मंत्रिपरिषद के लिए आवश्यक योग्यताएं होनी चाहिए।'

मंत्रिपरिषद की कार्यप्रणाली के संबंध में कौटिल्य का गोपनीयता पर विशेष बल है। उनका कथन है कि मंत्रणासभा में मंत्रणा करते समय मंत्रणा गुप्त रखी जानी चाहिए। जिस स्थान पर मंत्रणा हो रही हो वहां पंक्षी भी पर न मार सके, कोई झांक न सके, कोई शब्द बाहर न जा सके अन्यथा यह राजा और मंत्रिपरिषद दोनों के लिए घातक होगा। आवश्यकता पड़ने पर मंत्रणा को कछुए के अंगों की भांति प्रकाशन करना चाहिए अन्यथा अंगों को समेटे रहना चाहिए। कौटिल्य ने मंत्रणा के 5 अंग बताये हैं- कार्यारम्भ करने के उपाय, कर्मचारी तथा द्रव्य और अन्य सम्पत्ति, देश काल का विभाग, विध्न प्रतिकार तथा कार्यसिद्धि।

कौटिल्य ने राजा पर नियंत्रण रखते हुए मंत्रिपरिषद को महत्वपूर्ण अधिकार दिया है कि अगर राजा दुराचारी, भोग विलास में लिप्त, अयोग्य या राज्य के हितों की चिन्ता करने में असमर्थ हो तो मंत्रिपरिषद को उस पर नियंत्रण रखना चाहिए।[7]

3. जनपद-कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में कहीं भी स्पष्ट रूप से जनपद को परिभाषित नहीं किया है लेकिन जनपद से उनका आशय जनसंख्या एवं भूमि से अवश्य है। प्राचीन यूनानी राजनीतिक वैज्ञानिक अरस्तू की भांति कौटिल्य का कथन है कि- 'राज्य के नागरिकों को चरित्रवान, सहनशील, ईमानदार एवं वफादार होना चाहिए। नागरिकों को विलासिता से दूर रहते हुए राज्य हेतु अधिकतम उत्पादन करना चाहिए।' जनपद के दूसरे रूप भूमि के संबंध में कौटिल्य का कथन है कि, 'भूमि को उपजाऊ' होना चाहिए जिसमें कम से कम परिश्रम द्वारा ज्यादा से ज्यादा अन्न उपजाया जा सके। इसके अलावा भूमि को खनिज पदार्थों एवं वन सम्पदा तथा पशुधन से भी परिपूर्ण होना चाहिए। जलवायु अच्छी तथा लोग स्वस्थ होने चाहिए।

'अर्थशास्त्र' के दूसरे अधिकरण : अध्यक्ष प्रचार के प्रथम अध्याय में जनपद के संगठन के संबंध में कौटिल्य कहते हैं कि-'आठ सौ गांवों के बीच एक स्थानीय, चार सौ गांवों के

समूह में एक द्रोणमुख, दो सौ गांवों के बीच एक कार्वटिक और दस गांवों के समूह में संग्रहण नामक स्थानों की विशेष रूप से स्थापना करें। इस प्रकार प्रशासनिक दृष्टिकोण से जनपद, स्थानीय, द्रोणमुख, कार्वटिक, संग्रहण और गांव में विभाजित हुआ रहेगा।[8]

4. दुर्ग:

कौटिल्य के अनुसार दुर्ग भी राज्य का उतना ही महत्वपूर्ण अंग है जितना राजा, जनता और भूमि। दुर्ग राज्य की रक्षात्मक शक्ति तथा आक्रामक शक्ति दोनों का प्रतीक है। दुर्ग मजबूत और ऐसे होने चाहिए, जिनमें सेना के लिए अच्छी मोर्चेबंदी हो, पानी, भोज्य सामग्री तथा बारूद का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।

कौटिल्य चार प्रकार के दुर्गों की चर्चा करते हैं प्रथम प्रकार के दुर्ग का नाम औदिक दुर्ग (Water Fort) है इस प्रकार का दुर्ग चारों तरफ से पानी से घिरा रहता है जैसे-समुद्र से घिरा हुआ टापू। दूसरे प्रकार का दुर्ग-पार्वत दुर्ग (Hill Fort) के नाम से जाना जाता है। यह दुर्ग बड़ी बड़ी चट्टानों या पर्वत से घिरा रहता है। तीसरे दुर्ग का नाम, धान्वन दुर्ग (Desert Fort) है। जल और घास आदि से रहित अथवा सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग, धान्वन दुर्ग कहलाता है। चौथे दुर्ग का नाम, वन दुर्ग (Forest Fort) हैं। चारो ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा कॉटेदार सघन झाड़ियों से परिवृत्त दुर्ग, वन दुर्ग कहलाता है। आपातावस्था में सुरक्षा के दृष्टिकोण से प्रथम एवं द्वितीय प्रकार के दुर्ग औदिक एवं पर्वत दुर्ग महत्वपूर्ण हैं। कौटिल्य राजा को सलाह देते हैं कि आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुसार राजा को इन दुर्गो में शरण लेनी चाहिए।[9]

5. कोष:

कौटिल्य अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में राजा को यह सुझाव देते हैं कि उसे राज कोष के संग्रह पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए लेकिन यह अनैतिक रूप से नहीं होना चाहिए। कौटिल्य का कथन है कि- 'कोष वह श्रेष्ठ है जिसमें पूर्वजों की अपनी धर्म की कमाई हो जिसमें सोना, चांदी और रत्नादि भरे हुए हों। उसमें इतनी सम्पत्ति हो कि दुर्भिक्ष के समय परिवार बंधुओं और कर्मचारियों की रक्षा कर सकें। यही सम्पन्नता कहलाती है।'[10]

6. दण्ड अथवा सेना:

राज्य की सुरक्षा के लिए सेना का विशेष महत्व है कौटिल्य का कथन है कि, जिस राजा के पास अच्छा सैन्य बल होता है, उसके मित्र तो मित्र बने ही रहते हैं किन्तु शत्रु तक भी बन जाते हैं। सैनिक अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग में भली-भांति प्रशिक्षित, वीर, स्वाभिमानी और राष्ट्र प्रेमी होने चाहिए। वह क्षत्रिय वर्ग को सेना में नियुक्ति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानते हैं, किंन्तु उनका विचार है कि आवश्यकता पड़ने पर वैश्य और शूद्रों को भी सेना में नियुक्त किया जा सकता है कौटिल्य के अनुसार, संतुष्ट सेना विजय की कुंजी है, अत: सैनिकों को अच्छा वेतन व अन्य सुविधाएं प्रदान करते हुए संतुष्ट तथा प्रसन्न रखा जाना चाहिए।

कौटिल्य ने सेना को कई भागों में विभाजित किया है जैसे पैदल सेना रथ सेना, अश्व सेना और हस्ति सेना। इन सभी में हस्ति सेना को सर्वाधिक ताकतवर मानते हुए कौटिल्य इस पर ध्यान देने को कहते हैं।[11]

7. मित्र:

कौटिल्य के अनुसार मित्र भी राज्य का एक आवश्यक अंग है और मित्र आनुवंशिक होना चाहिए, न कि कृत्रिम। वह ऐसा हो जो आवश्यकता पड़ने पर सहायता करे तथा संबंध विच्छेद न करे।[12]

सप्तांग सिद्धांत का मूल्यांकन:

कौटिल्य के राज्य विषयक 'सप्तांग' के सातों अंग में उचित व सामन्जस्यपूर्ण व्यवहार से ही व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्यों, धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति करता है। यदि किसी अंग में कमियां आ जायें तो राज्य का अस्तित्व संकट में पड़ सकता है। सातों अंगों में कौटिल्य ने राजपद को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है और उसके सर्वगुण सम्पन्न होने की अपेक्षा की है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के आठवें अधिकरण के दूसरे अध्याय में लिखा है कि, 'राज्य राज्यमिति प्रकृति संक्षेप, 'अर्थात् संक्षेप में राज्य की केवल दो ही प्रकृति या अंग हैं राजा और राज्य। कौटिल्य के अनुसार, राजलक्ष्यों की प्राप्ति के लिए राजा अन्य अंगों के बीच समन्वय का कार्य करता है इसलिए राजा को हमेशा स्वयं के साथ अन्य राज्य के अंगों को रोगमुक्त या दोषमुक्त रखना चाहिए। राजपद को अत्यधिक महत्व देने के बाद यह प्रश्न उठता है कि क्या कौटिल्य का राजा निरकुंश हो सकता है? इस सम्भावना को नकारते हुए तथा इसका उत्तर देते हुए स्वयं कौटिल्य का कथन है कि राजा मनमाना आचरण नहीं कर सकता, क्योंकि उस पर अनुबंधवाद का, धार्मिक नियमों और रीति-रिवाजों का मंत्रिपरिषद का तथा स्वयं राजा के व्यक्तित्व तथा उसे प्रदान की गयी शिक्षा का प्रतिबंध है। इस संबंध में सालेटोर ने लिखा है कि- 'वह अपना राज्य और जीवन को खोये बिना यूनान के अत्याचारी राजाओं जैसा नहीं बन सकता, क्योंकि भारत में जनता ऐसे राजा को सहन नहीं कर सकती थी। यद्यपि राजा का पद सर्वोच्च था,

किन्तु न तो वह जनता से पृथक था और न उसके लिए विदेशी ही और वह जैसा चाहे, जनता के प्रति व्यवहार करने के लिए स्वतंत्र न था।'[13]

यद्यपि राज्य तत्वों की वर्तमान परिभाषा में कौटिल्य द्वारा कोष, दण्ड और मित्र को स्थान दिया जाना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता तथापि राज्य में इनकी महत्ता को आज भी स्वीकार किया जाता है। यह स्वीकारणीय है कि प्राचीनकाल में कोष और दुर्ग राज्य के अस्तित्व एवं जनता की समृद्धि के लिए आवश्यक तत्व रहे होंगे तथा छोटे-छोटे राज्य बिना मित्र राज्यों के अपना अस्तित्व बनाये रखने में असमर्थ थे।

सप्तांग सिद्धांत द्वारा कौटिल्य ने व्यवहावादी व यथार्थवादी राजनीति का प्रतिपादन किया है तथा धर्म व नैतिकता को दरकिनार करते हुए राज्य संस्था को लौकिक तथा धर्मनिरपेक्ष स्वरूप प्रदान किया है।[14]

निष्कर्ष:

प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य में कौटिल्यकृत 'अर्थशास्त्र' यथार्थवादी तथा व्यावाहारिक राजनीति का एक उच्च कोटि का मौलिक राजनीतिक ग्रंथ है राज्य की प्रकृति का वर्णन 'साव्यव' रूप में करते हुए कौटिल्य ने राज्य के प्रमुख सात अंगों को 'संप्तांग सिद्धान्त' के रूप में परिभाषित किया है तथा उन्हें स्वामी (राजा) अमात्य, जनपद दुर्ग, कोष दण्ड तथा मित्र का नाम दिया है। कौटिल्य का कथन है कि राज्य की ये सातों प्रवृतियां मिलकर राज्य के लक्ष्यों को प्राप्त करती हैं अत: उनके बीच में उचित समन्वय तथा सामन्जस्य होना चाहिए। किसी भीएक अंग की खामी राज्य के अस्तित्व को संकट में डाल सकती है अत: सप्तांग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग स्वामी (राजा) का यह कर्तव्य है कि वह स्वयं भी दोषमुक्त रहे तथा अन्य अंगों को भी दोषमुक्त रखे। इसके लिए कौटिल्य ने राजपद हेतु अत्यधिक योग्य व कर्तव्यपरायण व्यक्ति के चुनाव पर जोर दिया है जो राजलक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम हो।

सप्तांग सिद्धांत की समसामयिक प्रासंगिकता

कौटिल्य का सप्तांग सिद्धांत तत्कालीन प्रासंगिकता के साथ ही वर्तमान समय में भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रासंगिक बना हुआ है। कौटिल्य ने सप्तांग सिद्धांत के माध्यम से राज्य व प्रशासन का यथार्थवादी स्वरूप प्रस्तुत किया है। कौटिल्य के राज्य का प्रधान अंग स्वामी आज भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आज भी देश के शासक से हम प्रजापालक होने की आशा करते हैं कि देश का प्रधान हर तरह से जनता के हितों की रक्षा करने वाला उच्च गुणों से युक्त नैतिक चरित्रवान व्यक्ति हो। अमात्य या मंत्रिपरिषद् के रूप में वर्तमान प्रशासनिक अधिकारियों को देखा जा सकता है जो सरकार की नीतियों को देश में सुचारू रूप से बिना किसी लाभ या पक्षपात के लागू करें तथा देश को एकसूत्र में बांधने का कार्य करें। जनपद या वर्तमान प्रादेशिक इकाइयों का भी वर्तमान में महत्वपूर्ण स्थान है। जनसंख्या व अन्य संसाधनों के आधार पर समय-समय पर इसका भी पुनर्गठन होते रहना चाहिए। दुर्ग या देश की भौगोलिक सीमायें सुरक्षित होनी चाहिए जिससे शत्रु आसानी से आक्रमण न कर सके। कोष या कोषागार हमेशा देशी, विदेशी मुद्राओं से भरा रहे। दूसरे देशों से कर्ज लेने व दिवालियेपन की स्थिति न आये तथा प्राकृतिक आपदा या अन्य वित्तीय संकट के समय सुचारू रूप से धन जनता के हितों के लिए खर्च हो सके। विकास से सम्बन्धित कार्य हो सके। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देश विकासशील से विकसित स्तर पर पहुंच सके। दण्ड अथवा सेना जितनी पहले महत्वपूर्ण थी उससे कहीं अधिक वर्तमान समय में महत्वपूर्ण है। सैन्य बल के आधार पर आज के युग में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देश की शक्ति आंकी जाती है। सेना न सिर्फ देश की रक्षा ही करती है बल्कि शांति स्थापना हेतु भी आवश्यक है। सेना बाह्य आक्रमण से रक्षा के साथ ही शांतिपूर्ण क्रियाकलापों में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। मित्र की संकल्पना भी हमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शत्रुओं से भेद करना व संकट के समय सहयोग करना सिखाती है। आज पूरे विश्व में तमाम मैत्री संगठन बन रहे हैं जिनका उद्देश्य शांति, सुरक्षा व विकास ही है।

इस प्रकार कौटिल्य का 'सप्तांग सिद्धांत' कोई सामान्य सिद्धांत नहीं वरन् किसी भी देश का शासन चलाने का एक 'सर्वमान्य सिद्धांत' है जिसे आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया जा चुका है। यह अंतर्राष्ट्रीय विधि व अंतर्राष्ट्रीय राष्ट्र राज्य की अवधारणा के अस्तित्व का पूर्वाभास है। सुचारू रूप से शासन चलाने की कला से युक्त साव्यव सिद्धांत की कौटिल्य की यह दूरदर्शी व यथार्थवादी सोच न सिर्फ तत्कालीन परिस्थितियों में सार्थक थी वरन् वर्तमान व आने वाले समय की जनतांत्रिक व्यवस्था में 'सुशासन' (Good Governance) के दृष्टिकोण के साथ भी प्रासंगिक बनी रहेगी जिसमें राज्य के समस्त अंगों में समन्वय व एकता होना अनिवार्य पूर्वापेक्षा है तथा जिसमें शासक की भूमिका प्रधान के रूप में नि:संदेह, सर्वविदित तथा सर्वोपरि मानी गयी है।

शेष पृष्ठ 87 पर

22. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी- डॉ. निर्मला जैन, पृ.सं.- 75
23. हिन्दी आलोचना का विकास- डॉ. नंद किशोर नवल, पृ.सं.- 196
24. कामायनी अध्ययन की समस्याएँ- डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.- 11
25. कामायनी अध्ययन की समस्याएँ- डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.- 16
26. आस्था के चरण- डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.- 51
27. डॉ. नगेन्द्र ग्रंथावली (खण्ड-1)- डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.- 341
28. डॉ. नगेन्द्र ग्रंथावली (खण्ड-1)- डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.- 341
29. हिन्दी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ- रामदरश मिश्र, पृ.सं.- 216
30. डॉ. नगेन्द्र की साहित्य साधाना- डॉ. सुब्बा लक्ष्मी पृ.सं.- 130
31. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और परवर्ती आलोचना- डॉ. अमरनाथ, पृ.सं.- 139
32. हिन्दी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ- रामदरश मिश्र, पृ.सं.- 212
33. डॉ. नगेन्द्र ग्रंथावली (खण्ड-7)- डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.- 92
34. हिन्दी आलोचना के नाभि पुरुष : डॉ. नगेन्द्र- सं. शैल्या माहेश्वरी, पृ.सं.- 247
35. हिन्दी के आलोचक- राचारानी, पृ.सं.- 204
36. हिन्दी आलोचना के नाभि पुरुष : डॉ. नगेन्द्र- सं. शैलजा माहेश्वरी, पृ.सं.- 172
37. हिन्दी आलोचना : इतिहास और सिद्धान्त- योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ.सं.- 165
38. हिन्दी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ- रामदरश मिश्र, पृ.सं.- 222
39. हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार- कृष्णदत्त पालीवाल, पृ.सं.- 452

◆◆◆

पृष्ठ 41 का शेष **प्राचीन संस्कृत साहित्य में .....**

संदर्भ :

1. ब्राउन, डी. मेकैंजी, 'इंडियन पॉलिटिकल थॉट फ्राम मनु टु गांधी', द व्हाइट अम्ब्रेला-यूनिवर्सिटी ऑव कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले एण्ड लॉस एन्जेल्स (1959), पृ0-53.
2. रंगराजन, एल0एन0, 'द अर्थशास्त्र (इन्ट्रोडक्शन)', पेन्गुइन बुक्स, नई दिल्ली (1987), पृ0-1-2.
3. चट्टोपध्याय, एच0 पी0, सरकार, एस0 के0, (सम्पादकगण) 'ग्लोबल इनसाइक्लोपीडिया ऑव पालिटिकल साइंस', वॉल्यूम 1, ग्लोबल विजन पब्लिशिंग हाउस, (2006), पृ.-779-786.
4. प्रसून, श्रीकांत, 'चाणक्य नीति एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र' वी एण्ड एस पब्लिशर्स, नई दिल्ली (2012), पृ.-196.
5. जैन, पुखराज, 'प्रमुख राजनीतिक विचारक', साहित्य भवन आगरा (1991), पृ0- 49-50.
6. अर्थशास्त्र पहला अधिकरण-विनयाधिकारिक.
7. प्रसून, श्रीकांत, 'चाणक्य नीति एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र' वी एण्ड एस पब्लिशर्स, नई दिल्ली (2012), पृ0-171-172.
8. अर्थशास्त्र छठा अधिकरण-मण्डल योनि, दूसरा अधिकरण-अध्यक्ष प्रचार.
9. चौधरी, राधा कृष्णन, 'कौटिल्याज पॉलिटिकल आइडियाज एण्ड इंस्टीट्यूशन', वॉल्यूम 73, चौरवम्भा संस्कृत सीरिज प्रकाशन, वाराणसी (1971), ओरिजनल फ्रॉम-द यूनिवर्सिटी ऑव मिशिगन, डिजिटाइज्ड-2 नवम्बर, 2006, पृ0-50 122, 219.
10. अर्थशास्त्र छठा अधिकरण-मण्डल योनि.
11. विकिपीडिया. आर्ग.
12. शर्मा, रामशरण, 'आस्पेक्ट्स ऑव पॉलिटिकल आइडियाज एण्ड इंस्टीट्यूशसन्स इन एनाशियन्ट इंडिया', मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, दिल्ली (1991), पृ0-37.
13. सालेटोर, बी0ए0, 'एनाशियन्ट इण्डियन पॉलिटिकल थॉट एण्ड इंस्टीट्यूशन', एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (1963), पृ0-319-331.
14. आल्तेकर, ए0एस0, 'स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन एनशियन्ट इण्डिया', मोतीलाल बनारसीदास, बनारस (1949), पृ0- 261.

◆◆◆